वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

JULY-2025

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :

श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

भावनगर - ३६४ ००१.

'यह अनुकूलता ठीक है' – इस धोखेमें मत रहना !!

– पूज्य भाईश्री शशीभाई

एक विचार करने जैसा है, कि यह जीवन जो बीता चला जा रहा है उसमें कोई **extension** नहीं मिलता। इसमें कोई सीमावृद्धि नहीं हो सकती कि, चलो भाई, आपका हित करना अभी बाकी है तो आपकी आयुकी सीमा पाँच साल बढ़ा देते हैं। पाँच साल बाद यहाँसे विदा होना। ऐसा सम्भव नहीं है। आयु पानीके बहावके जैसे बीता चला जा रहा है। रोकना चाहे तो भी रोक नहीं सकते। **Time and tide wait for none** किसीके लिए इसे रोकना सम्भव नहीं है। यदि गहरी रुचि और उत्साहसे भेदज्ञान नहीं किया तो जो समय बीत गया वह फिर मिलने वाला नहीं है। अतः जो समय बीत रहा है वह बहुत क़िमती समय बीता जा रहा है, बहुत बड़ा नुकसान हो रहा है। इस बात पर तनिक ध्यान जाये तब तो भीतरमें थोड़ा सावधान होगा वरना तो व्यर्थ कार्योंके पीछे समय निकल जायेगा। वर्तमान आयु कोई आयु है क्या? सौ–पचास सालकी आयु और वह भी निश्चित नहीं, कब किसका राम नाम सत् हो जाये कुछ कह नहीं सकते। जबकि देवोंकी अरबों वर्षकी, सागरोपमकी आयु भी 'यह अनुकूलता अच्छी है।' – ऐसे भावमें निकल जाती है। एक नाटक देखने बैठे तो इसमें दस हज़ार साल निकल जायें। वहाँ तो ऐसी व्यवस्थाएँ होती हैं। जैसे यहाँ शहरमें बड़ी–बड़ी सुविधाएँ होती हैं, सो तो कुछ भी नहीं है – ऐसी–ऐसी सुविधाएँ वहाँ होती हैं कि जिस बीच समय कहाँ कैसे बीत जाता है पता नहीं चलता। रसमें लीनताके पीछे समयका पता नहीं चलता। इस बातको सदैव लक्ष्यमें रखेंगे तबतो हमें आत्मकार्य करनेकी चटपटी लगेगी। अंतरमें ऐसी चटपटी लगे बिना हमारे कार्य करनेके पुरुषार्थमें तेज़ी, उद्यमकी उत्सुकता नहीं आयेगी, जब तक ऐसा नहीं बनेगा तब तक कार्य होगा भी कहाँसे?

'भेदज्ञानके होनेमें तीक्ष्ण रुचि ही काम करती है।' पीछे लग जाये। जीवनमें यह एकमात्र कार्य करने योग्य है – इसके पीछे ज़ोरसे लग जाये। सारी दुनिया चाहे रसातालमें चली जाये मुझे किसीका काम नहीं है – इसप्रकार एकदम तीव्रतासे दूसरोंका निषेध आये और स्वकार्य करनेका उत्साहमें जो आता है वह जीव ही कार्य कर लेता है।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल–१३८, 'अध्यात्मसुधा' भाग–४, दि.–२०–६–१९८७, पन्ना–२१६, प्र.क्र.–१०२)

*

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्–२५५१, अंक–३३१, वर्ष–२७, जुलाई–२०२५

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीके श्री 'परमागमसार'में से चुनी हुई 'कहानरत्नकी किरणें'

तीनलोकके नाथस्वरूप यह आत्मवस्तु अभेद है । उसका लक्ष्य करनेसे सम्यग्दर्शन होता है । गुण–गुणीके भेदमें लक्ष्य रहनेसे विकल्प उठेंगे, राग होगा, बन्धन होगा, इसलिए गुण–गुणीके भेदको ऐसा अलोप कर दे कि मानो जानता ही नहीं और जहाँ नित्यानन्द प्रभु है वहाँ दृष्टि दे, भाई ! द्रव्यदृष्टि ही सम्यग्दर्शन है । परन्तु द्रव्य तथा उसके गुणोंकी दृष्टि सम्यग्दर्शन है – ऐसा नहीं कहा है । १३५

*

प्रथम द्रव्य–गुण–पर्यायको जानें । प्रारंभमें भेद आदिके विकल्प होते हैं, परन्तु बादमें एक सूक्ष्म विषयी पर्यायको संक्षिप्त करते हैं और गुण–गुणीके भेदको अंतरलीन कर देते हैं । संक्षिप्त करना – इसका अर्थ क्या ? – कि पर्यायका लक्ष्य छोडकर अनन्त–अनन्त गुणोंका जो पी गया है, ऐसे द्रव्यको ध्येय बनाकर केवल आत्माको ही जाननेसे प्रतिक्षण मलिनताका नाश होता है, वीतरागता प्रकट होती है । मलिनताका क्षय होता जाता है – करना पड़ता है, ऐसा नहीं कहा, क्योंकि वह प्रतिक्षण स्वतः नाशको प्राप्त होती है । १३६

*

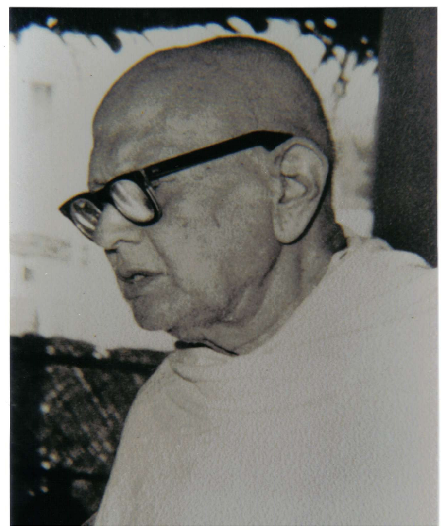

जब तक परिपूर्ण स्वभाव पर दृष्टि नहीं होती , तब तक पर्याय पर दृष्टि होनेसे उस कालमें, अर्थात् मिथ्यात्व दशाके कालमें, जीव रागादिका कर्ता होता है । १३७

*

जगतमें सारभूत क्या ? – कि निजशुद्ध जीववस्तु ही सार है, वही हितकारी है और उसे जाननेसे पर्यायमें ज्ञान तथा सुख प्रकट होते हैं, क्योंकि शुद्ध जीववस्तुमें ज्ञान और सुख है और उसीसे वह साररूप होनेसे वन्दनीय है – पूजयनीय है । १३८

*

जिनवर कथित व्यवहार स्वयं न तो सम्यक्त्व स्वरूप है और न ही सम्यक्त्वका कारण है। ज्ञायक भगवान स्वयं ही सम्यक्त्वका कारण है। सम्यक्तवका कारण है । स्वके ज्ञान और स्वकी श्रद्धा बिना जिनवर कथित व्यवहारका पालन करे, तो भी वह संसार ही का कारण है । १३९

*

बारह–अंगका ज्ञान, पूर्वमें कभी न होने पर भी, विस्मयकारी नहीं है, परन्तु उसमें दर्शित भगवान आत्मा ही विस्मयकारी है । जिस ज्ञानमें आत्मा कारण न हो वह ज्ञान नहीं । यहाँ तो अभेददृष्टिसे आत्माहीको 'ज्ञान' बतलाया है , परन्तु ऐसा बतलाकर पुनः कहा है कि आत्मा ही ज्ञान में कारण है – हेतु है – निमित्त है। लेकिन ऐसा नहीं कहा है कि आत्मा ज्ञानकी पर्यायमें उतर आता है । आत्माका ज्ञान पर्यायमें होता है, परन्तु आत्मा पर्यायमें नहीं आता। १४०

*

शास्त्रका जो कुछ भी ज्ञान होता है , उसमें शब्द निमित्त है । इसलिए उस ज्ञानको शब्दश्रुत–ज्ञान कहते हैं, पर वह आत्मज्ञान नहीं है । वास्तवमें तो शब्दश्रुत – ज्ञानमें ज्ञानका जो परिणमन है वह आत्माका परिणमन ही नहीं , क्योंकी जैसे पुद्गलकी शीत–उष्ण आदि अवस्था ज्ञान करानेमें निमित्त है, परन्तु शीत–उष्णरूप परिणमित होना ज्ञानका कार्य नहीं, वह तो पुद्गलका ही कार्य है, वैसे ही नव–तत्तवकी श्रद्धा, शास्त्र–ज्ञान और व्यहारःचारित्र ये तीनों ही राग हैं और आत्माका रागरूप परिणमित होना असंभव है । १४१

*

जिस ज्ञानका आधार शब्दश्रुत है – आत्मा नहीं, वह शब्दश्रुत–ज्ञान है, उससे आत्मज्ञान नहीं होता । शब्दश्रुतको जाननेका जितना विकल्प है, वह परलक्ष्यीज्ञान है । वीतरागके शास्त्रोंका ज्ञान भी परलक्ष्यी ज्ञान होनेसे परलक्ष्यी ज्ञानका निषेध किया गया है । १४२

*

प्रश्न :– पर्याय द्रव्यसे (ध्रुव) भिन्न है अथवा अभिन्न ? किस प्रकार ?

उत्तर :– ध्रुव द्रव्य तो पर्यायसे भिन्न है, क्योंकि जो ध्रुव है उसमें पर्याय नहीं और पर्यायमें ध्रुव उतरता नहीं, अर्थात् ध्रुव पर्यायका स्पर्श ही नहीं करता । परन्तु परसे भिन्न करने के प्रयोजन से ऐसा कहा जाता है कि पर्याय द्रव्यकी है, पर उसका अर्थ यह नहीं कि सामान्यरूप द्रव्य और विशेषरूप पर्याय – ऐसे भिन्न धर्म एकरूप हो जाते हैं । वस्तुतः तो दोनों घर्म एक दूसरेका स्पर्श ही नहीं करते । १४३

*

प्रश्न :– आगमका व्यवहार और अध्यात्मका व्यवहार – माने क्या ?

उत्तर :– स्वरूपकी दृष्टि होनेसे जो शुद्ध परिणमन होता है वह अध्यात्मका व्यवहार है और (पंच) महाव्रत, तीन गुप्ति आदि शुभराग आगमके व्यवहार हैं । १४४

*

प्रश्न :– किसी अपेक्षा द्रव्य परिणामी है न ?

उत्तर :– (ध्रुव) द्रव्य तो अपररिणामी है, वह तो बन्ध–मोक्षके परिणामोंको भी नहीं करता, परन्तु पर्यायदृष्टिसे कहना हो तो पर्याय ध्रुवमें से उत्पन्न होती है और ध्रुवमें ही विलीन

होती है, अतः पर्याय अपेक्षासे द्रव्य परिणमन करता है । वह द्रव्यदृष्टिसे निष्क्रिय है, पर्यायदृष्टिसे सक्रिय है । १४५

*

प्रश्न :– परलक्ष्यी ज्ञानसे आत्मा जाना नहीं जाता और अनादि मिथ्यादृष्टिको स्वलक्ष्यीज्ञान नहीं है तो साधन क्या ?

उत्तर :– रागसे भिन्न होना – यह साधन है । प्रज्ञाछेनी साधन कहो या अनुभूतिको साधन कहो, यह एक ही साधन है । १४६

*

प्रश्न :– परिणामी निश्चयसे स्वयंके परिणामका कर्ता है और दूसरी ओर पूर्व पर्यायका ''व्यय'' कर्ता है...वह किस प्रकार?

उत्तर :– वास्तवमें तो उत्पादकी पर्यायका कर्ता उत्पाद ही है, परन्तु अभेदको मुख्य रखते हुए उपचारसे परिणामीको कर्ता कहते हैं । लेकिन (ध्रुव) द्रव्य तो परिणमित ही नहीं होता। ध्रुव द्रव्य तो निष्क्रिय है, जो परिणमनशील है वह पर्याय है । व्ययको उत्पादका कर्ता कहना यह भी व्यवहार है । षट्कारकके परिणाम – ध्रुव और व्ययकी अपेक्षा बिना स्वतः उत्पन्न होते हैं । १४७

*

जिज्ञासुको प्रथम ऐसा निर्णय होता है कि मैं निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करने योग्य हूँ । वहाँ शंकाके लिये अवकाश नहीं । आयु–बंध हो गया हो तो ! ऐसी शंकाके लिये स्थान नहीं होता । आत्माके लिये हल्की–फुल्की बात न करना । स्वयं जो अनन्त गुणोंसे युक्त है, उसे देख, तूँ ही देवाधिदेव है – ऐसे देखना चाहिए। १४८

*

प्रश्न :– आत्मामें जो शुभाशुभ–भाव होते हैं उनका मूल उपादान कौन है ?

उत्तर :– अशुद्ध उपादानसे आत्मा स्वयं शुभाशुभ–भावमें व्याप्त होकर उन्हें करनेसे उनका कर्ता है और शुद्ध उपादानसे देखें तो पुण्य–पापभाव आत्माके स्वभाव–भाव न होनेसे तथा पुद्गलके लक्ष्यके उत्पन्न होनेसे, वे पुद्गलके कार्य हैं । पुद्गल उनमें व्यापक होकर कर्ता होता हैं। जब स्वभाव पर दृष्टि जाती है तब ज्ञानी योग और उपयोग (राग) का स्वामी न होनेसे उनका कर्ता नहीं होता। परन्तु ज्ञानीके ज्ञानमें राग निमित्त होता है। १४९

*

जैसे भक्ति आदि बन्धके कारण हैं वैसे ही शास्त्र–अध्ययन भी पुण्य–बन्धका कारण है और उनसे हटकर ज्ञायकका अनुभव करना ही मोक्षका कारण है । शास्त्रोंका क्या कथन है? आचारांगादिमें क्या कहा है ? – कि आत्माका अनुभव करो । परसे, रागसे भिन्न वस्तुभूत ज्ञानमय आत्माका करना–यही शास्त्र–अध्ययनका गुण है । लेकिन अभवीको उसका अभाव होनेसे वह अज्ञानी है । आत्मा शुद्धज्ञानमय है जो शास्त्रज्ञानके विकल्पसे भी रहित है – जिन्हें ऐसे आत्माका ज्ञान नहीं, उन्होंने यदि शास्त्र–अध्ययन भी किया, तो उससे क्या ? १५०

*

शंका :– तो फिर हम शास्त्र पढ़े या नहीं?

समाधान :– आत्मलक्ष्यसे शास्त्र पढ़ना – ऐसा ''प्रवचनसार'' में कहा है , क्योंकि शास्त्रोंका कहना ऐसा है कि भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु शाश्वत आनन्दकी मूर्ति है –

उसका ज्ञान करना, अनुभव करना। करणानुयोग या चरणानुयोगके पढ़नेसे लाभ क्या ? – कि उन चारों अनुयोगोंके पढ़नेका गुण तो आत्म–अनुभव प्राप्त करना है – यही शास्त्र पढ़नेका लाभ है अर्थात् ''आत्म–अनुभव करना ही शास्त्राभ्यास का तात्पर्य है।'' १५१

*

प्रश्न :– जब पर्याय द्रव्यका स्पर्श ही नहीं करती तो आनन्द किस प्रकार आए ?

उत्तर :– पर्याय द्रव्यको स्पर्श न करने पर भी सम्पूर्ण द्रव्यका ज्ञान पर्यायमें हो जाता है, फिर भी द्रव्य पर्यायमें नहीं आता। धर्मी और धर्म में दो वस्तुयें हैं। पर्याय व्यक्त है और ध्रुव वस्तु अव्यक्त है। दोनों एक द्रव्यके धर्म होने पर भी व्यक्त–अव्यक्तको नहीं छूता, परन्तु पर्यायका लक्ष्य द्रव्योन्मुख होनेसे पर्याय आनन्दरूप परिणमित होती है। १५२

*

प्रश्न :– हम आत्माका ध्यान तो बहुत करते हैं, फिर भी आत्माका अनुभव क्यों नही होता?

उत्तर :– आत्मासे सच्चा प्रेम होना चाहिए। जैसे बालकको अपनी प्रिय माँको और युवकको अपनी प्रिय पत्नीको देखते ही अन्तरमें प्रेम उमड़ता है, वैसे ही अन्तरमें आत्माके प्रति सच्चा प्रेम उमड़े तो आत्म–अनुभव हुए बिना न रहे। आत्म–अनुभव नहीं होता इसका कारण – अभी आत्माके प्रति सच्चा प्रेम जगा ही नहीं है। १५३

*

प्रश्न :– आचार्यदेवने सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके लिए छः मास तक अभ्यास करनेका निर्देश दिया है और हमको तो पच्चीस–तीस वर्षोंके अभ्यासके बावजूद भी आत्म–अनुभव नहीं होता, तो क्या कमी रह जाती है ?

उत्तर :– अन्तरकी गहराईसे रुचि और लगन होनी चाहिए, बस, इसीकी कमी रह जाती है। छः मास तक अन्तर्धुन लगनी चाहिए। जो आत्माको लक्ष्य कर छः मास तक आत्मःधुन लगे तो आत्म–अनुभव हुए बिना नहीं रहे। १५४

*

नरकके नारकीको स्वर्गके सुखकी गन्ध नहीं, स्वर्गके देवको नरकके दुःखकी गन्ध नहीं, रागमें धर्मकी गन्ध नहीं, परमाणुमें पीड़ाकी गन्ध नहीं, सूर्यमें अन्धकारकी गन्ध नहीं और सुख–स्वभावमें संसार–दुःखकी गन्ध नहीं। १५५

*

प्रश्न :–सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेकी विधि क्या है ?

उत्तर :– आत्मा परका कर्ता नहीं, रागका भी कर्ता नहीं। रागसे भिन्न ज्ञायक मूर्ति हूँ – ऐसी अन्तर–प्रतीति करना ही विधि है। अहा हा ! ऐसा समय मिला है ! यह तो आत्माको रागसे भिन्न कर लेनेका अवसर है। १५६

*

''जयधवल'' में आता है कि खम्भेके एक भागको देखते ही पूरे खम्भेका ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार मतिज्ञान केवलज्ञानका अवयव होनेसे उस एक अंशका ज्ञान होते ही केवलज्ञानकी प्रतीति हो जाती है। १५७

*

प्रश्न :– जब समयग्दृष्टिका उपयोग परमें हो – क्या वह तब भी स्वप्रकाशक है ?

उत्तर :– सम्यग्दृष्टिका उपयोग परमें हो तब भी (ज्ञान) स्वप्रकाशक है। परन्तु उपयोगरूप परप्रकाशक होनेके समय उपयोगरूप स्वप्रकाशक

नहीं होता और उपयोगरूप स्वप्रकाशक हो तब उपयोगरूप परप्रकाशक नहीं होता । लेकीन ज्ञानका स्वभाव तो स्व–पर–प्रकाशक ही है । १५८

*

प्रश्न :– चैतन्यतत्त्वमें रस लेनेसे क्या लाभ होता है ?

उत्तर :– चैतन्यतत्त्वमें रस लेनेसे आत्म–संस्कार पड़ते हैं, संस्कार दृढ़ होते हैं ।

प्रश्न :– संस्कारसे लाभ होता है ?

उत्तर :– भेदज्ञानके संस्कार दृढ़ होते–होते एकदमसे स्वानुभव हो जाता है । १५९

*

प्रश्न :– एकदमसे आत्मामें कैसे जाया जाए?

उत्तर :– रागसे भिन्न पड़ते ही एकदमसे आत्मामें जाया जाता है । मैं यह नहीं , मैं यह नहीं, मैं राग भी नहीं – यह ज्ञानमूर्ति ही मैं हूँ, अन्तरमें ऐसे उतरते–उतरते आत्माको पाया जाता है । यद्यपि यह काम अति दुष्कर है–अलौकिक है फिर भी अन्तर प्रयत्नसे संभव है। १६०

*

प्रत्येक द्रव्यकी पर्याय अपने स्वकालमें अपने षट्कारकसे स्वतंत्र ही परिणमित होती है –यह सूक्ष्म विष्य है । जैन–दर्शन वस्तु–स्थितीका वर्णन करता है । १६१

*

प्रश्न :– आत्माको जाननेका प्रयत्न करने पर भी वह जाननेमें क्यों नहीं आता ?

उत्तर :– सच्चा प्रयत्न तो किया नहीं, उल्टी ही कोशिश करता है । पुण्यमें एकता करता है, रागमें एकत्व कर लाभ मानता है, व्रतादिसे लाभ मानकर अभिमान करता है। इन सभी विपरीत बुद्धिओंको छोड़कर ज्ञायक मूर्ति आत्माके सम्मुख देखे तब ही आत्मा जाननेमें आता है। १६२

*

श्रीमद् योगीन्द्रदेवने तो स्पष्ट कहा है कि हिंसा–झुठ–चोरी आदि तो पापभाव हैं; परन्तु दया–दान–पूजा–भक्ति आदिके शुभराग भी परमार्थ दृष्टिसे पाप हैं , क्योंकि वे भी स्वरूपसे पतित करते हैं । आहा ! पापको तो सभी पाप कहते हैं परन्तु आत्मानुभवी जीव तो पुण्यको भी पाप कहते है । यह बहुत सूक्ष्म बात है, अन्तरकी गहराईसे ही समझमें आनेवाली है । १६३

*

प्रश्न :– ज्ञानीको दुःखका ज्ञान होता है, या वेदन होता है ?

उत्तर :– ज्ञानीको दुःखका ज्ञान होता है और वेदन भी होता है। जैसे आनन्दका वेदन होता है , वेसे ही जितना दुःख है उतना दुःखका वेदन भी है । १६४

*

ज्ञाता–दृष्टा स्वभावमात्रकी दृष्टि होने पर अभेदमें नवतत्त्वरूप परिणमन नहीं है, चेतना स्वभावमात्र वस्तु में भेद तो है नहीं , अतः उन्हें झुठ कह दिया है । पर्याय–पर्याय रूपसे सत्य है लेकिन लक्ष्य करनेके उद्देश्यसे झूठी है । दया–दान आदि तो राग हैं , वे लक्ष्य करने योग्य नहीं हैं । पर संवर–निर्जरा भी लक्ष्य करने योग्य नहीं, केवल जानने योग्य हैं । १६५

*

जीवको अधोगतिमें जानेका कारण – कुटुंबमोह और परमें निजबुद्धि !

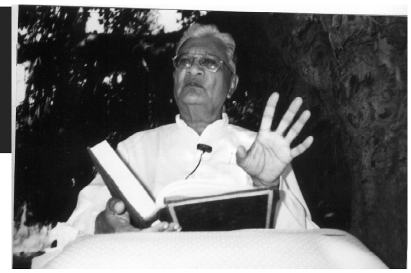

श्रीमद् राजचंद्र, पत्रांक–५१० पर प्रवचन

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

(गतांकसे आगे...)

गुरुदेव थे न ! उनके (साथ) एक प्रसंग बना था। (उनका) पुण्ययोग बहुत था। मनुष्यमें ईर्ष्या ज्यादा होती है। किसीकी भी अच्छाई होती है तो ईर्ष्या बहुत होती है। ये मनुष्य स्वभाव हो गया (है)। देवोंमें भी होती है तो मनुष्यमें तो होगी ही होगी। (गुरुदेवश्रीका) तीनों संप्रदायमें विरोध होता था। स्थानकवासीमेंसे निकले तो बोले कि, यह संप्रदाय ही गृहीत मिथ्यात्वका है, इसलिये हम नहीं रहेंगे। वे लोग गरम हो गये – (बोले कि), हमको गालियाँ देते हैं। श्वेताम्बर साधु थे (तो गुरुदेव) वस्त्रधारीको साधु नहीं मानते थे। वे लोग भी गरम हो गये। (बोले कि) क्या हम साधु नहीं हैं ? इतना त्याग किया, व्यापार छोड़ दिया, कारखाना छोड़ दिया, पत्नीको छोड़ दिया, नंगे पैर चलते हैं, गरम पानी पीते हैं, (फिर भी) गुरुदेव (उन्हें साधु) मानते नहीं थे। अब रहे दिगंबर। दिगंबरमें भी जो भावलिंगी संत हैं उनको ही मानते थे। नग्न हो गये इसलिये साधु हो गये, वह नहीं मानते थे। छठे–सातवें गुणस्थानधारी हो, २८ मूलगुणका (पालन करते हो), उसरूप पवित्रताके बिना स्वीकारते नहीं थे। सब नाराज हो गये। फिर, जो धार्मिक अखबार (निकालते थे वे लोग) गालियाँ निकालने लगे – 'कानजी ऐसे हैं... कानजी ऐसे हैं... कानजी वैसे हैं।' और वह अखबार गुरुदेवके पास पोस्ट करते थे। गुरुदेव पढ़ते भी थे। (और) क्या बोलते थे मालूम है? 'अरे... भगवान ! तुझे क्या हुआ है ?' क्या बोलते थे ? गालियाँ निकालनेवालेको क्या बोलते थे ? 'अरे... भगवान ! ये तुझे क्या हुआ ? तेरे परिणाम बिगड़े। किसीको भी हमारेसे दुःख पहुँचे ऐसा हम चाहते नहीं है।' उनको भी भगवान कहकर ही पुकारते थे। द्वेष नहीं होता था, गालियाँ निकालनेवालेके प्रति भी द्वेष नहीं होता था। उनको भी भगवानकी नज़रसे ही देखते थे।

'मैंने मेरा सब छोड़ा' या 'मेरा था उसका त्याग किया' या 'मेरे पैसेका दान दिया' (ऐसा कहनेवालेने और माननेवालेने) मेरापन रखा है। छोड़नेके बावजूद भी मेरापन रखा है तो (कुछ) छोड़ा ही नहीं है।

यहाँ बहुत अच्छी बात आयी है कि, *'जिस प्रकारसे पुत्रादि संपत्तिमें इस जीवको मोह होता है, वह प्रकार सर्वथा नीरस और निंदनीय है।'*

मुमुक्षु :– भाईश्री ! विपरीत अभिप्रायवालेके साथ हमें द्वेष नहीं होता है, इसका checking कैसे करें?

पूज्य भाईश्री :– अवलोकन करे तो

(मालूम पड़े)। द्वेष होगा तो, द्वेषके परिणाम तो बहुत स्थूल हैं। द्वेष होनेसे क्या होगा ? क्रोध होगा। क्रोधके परिणाम तो बहुत स्थूल हैं। अवलोकन करनेसे मालूम पड़ जायेगा। (परिणाममें) मध्यस्थता होगी तो करुणा आयेगी। क्या आयेगी ? (करुणा आयेगी)। गुरुदेवश्रीका दृष्टांत क्यों दिया ? कि गुरुदेवको गालियाँ देनेवालोंके प्रति करुणा आती थी कि, अरेरे... बेचारा गाली देता है, तब भी दुःखी है और गाली देनेसे जो कर्म बाँधता है, उस कर्मके उदयमें भी दुःखी हो जायेंगे। किसीको भी दुःख पहुँचे ऐसा हम चाहते नहीं। उनके प्रति ऐसी करुणा करते थे - करुणा रखते थे। करुणा करनेवालेको द्वेष और क्रोध नहीं आयेगा और द्वेष और क्रोध करनेवालेको करुणा नहीं आयेगी। (इस तरह) पता (लग) जायेगा।

हम (ऐसी) अपेक्षा रखें कि, हमारा जैसा अभिप्राय है, ऐसा ही सबका (अभिप्राय) हो जाये। ये नासमझ है। यह समझदारी नहीं है। यह कभी होनेवाला नहीं है। कृपालुदेवको एक आदमीने प्रश्न पूछा कि, आप जैन धर्मकी प्रशंसा करते हो न ? (तो कृपालुदेवने कहा) हाँ, करते हैं। (क्यों करते हो) ? (क्योंकि) उच्च स्तरका धर्म है। (उसने पूछा) उच्च स्तरका माने सबसे उच्च स्तरका है ? (तो कहा) हाँ, विश्वमें सबसे उच्च स्तरका है। (उसने कहा) अगर विश्वमें सबसे उच्च स्तरका यह धर्म है तो सब लोग क्यों नहीं मानते ? कुछ एक लोग मानते हैं, सब लोग क्यों नहीं मानते ? (तो कृपालुदेवने कहा) ये कभी बननेवाला नहीं है। क्यों ? (क्योंकि) सभी संसारियोंकी मति 'कर्मानुसारी मति' है। कैसी है ? कर्मानुसारी मति है। उसे जो कर्मका उदय आता है, उसके पीछे उसकी मति काम करती है। जैसा उदय आता है, उस प्रकारकी मति काम करती है। (कृपालुदेवने) जवाब तो अपनी भाषामें दिया है कि, यह कर्मकी बाहुल्यता है। विध-विध प्रकारके कर्म उदयमें आते हैं, उस-उस प्रकारकी मति हो जाती है। (कहनेका तात्पर्य यह है कि) ये कभी बननेवाला नहीं है, बनेगा भी नहीं। हमारेमें उतनी मध्यस्थता होनी चाहिये और उतनी सहनशीलता होनी चाहिये। (अगर) हमारे से विरुद्ध अभिप्राय कोई रखता है, इसके प्रति भी हम द्वेष नहीं करे और मध्यस्थतासे इसका विचार करे कि, इसका भी कल्याण कैसे हो ? वह भी सत्यको कैसे प्राप्त करे ? इस प्रकारका हमारा attitude रहना चाहिये।

आज संसारमें भी यह (मुख्य) बात हो गई है कि, 'सर्वधर्मसहिष्णुता' (होनी चाहिये)। क्या शब्द प्रयोग है ? 'सहिष्णुता' शब्द है। कोई मंदिर बनायेगा, कोई मस्जिद बनायेगा तो कोई गुरुद्वारा बनायेगा, कोई क्या बनायेगा और कोई क्या बनायेगा। सब स्वतंत्र हैं। हम किसीको हाँ (या) ना कर सकते नहीं। जैसा जिसका अभिप्राय है, वैसा काम करेगा। हमको सहिष्णुता रखनी चाहिये। (ऐसा लोग बोलते हैं)। हम मंदिर बनाने नहीं देंगे, हम मस्जिद बनाने नहीं देंगे - वह बात संसारीलोग भी नहीं करते हैं ! तो धर्ममें तो यह बात होनी ही नहीं चाहिये कि, हमारे अभिप्रायवाले सब हो। (जो ऐसा मानता है) वह द्रव्यकी स्वतंत्रताको स्वीकारता नहीं

(है)। सभी जीव स्वतंत्र हैं।

हमारे जीवने अनंतबार समवसरणमें जाकर (भी) भगवानकी आज्ञा नहीं मानी। भगवान तो पूरे समर्थ हैं, सर्वज्ञ शक्तिके धारक हैं, अनंत चतुष्टय प्रगट किये हैं, लेकिन हम भी स्वतंत्र थे (तो आज्ञा नहीं मानी) ! वैसे सब स्वतंत्र हैं। किसीकी स्वतंत्रता पर तराप मारना, ये बराबर नहीं है। ऐसा नहीं होना चाहिये। हम तो पढ़े-लिखे लोग हैं। वैचारिक स्वातंत्र्यता (होनी चाहिये), (सब) समझते हैं। बापका कोई विचार हो, बेटेका कोई विचार है, पत्नीका कोई विचार हो; सब अपने-अपने विचार करनेके लिये स्वतंत्र हैं। इसलिये किसी पर दबाव नहीं होना चाहिये। हमारा भी किसी पर (दबाव) नहीं होना चाहिये।

मुमुक्षु :- कोई अपने पर दबाव करे तो?

पूज्य भाईश्री :- कोई दबाव करे तो उसे समझाना चाहिये कि, ये दबाव करने लायक बात नहीं है, क्योंकि ऐसा बननेवाला नहीं है। हम भी स्वतंत्र जीव हैं। सब जीव हैं (और) सब स्वतंत्र जीव हैं।

'जीव यदि जरा भी विचार करे तो यह बात स्पष्ट समझमें आने जैसी है कि इस जीवने किसीमें पुत्रत्वकी भावना करके अपना अहित करनेमें कोई कसर नहीं रखी,...' गुजरातीमें तो 'माठु करवामां मणां राखी नथी' (ऐसा लिखकर) 'म' का alliteration किया है। पुत्रपना मानकर, पितापना मानकर अपना अहित करनेमें कोई कसर नहीं रखी (और) सब गड़बड़ कर दिया। *'और किसीको पिता मानकर भी वैसा ही किया है, और कोई जीव अभी तक तो पिता पुत्र हो सका हो, ऐसा देखनेमें नहीं आया।'* (जो) आज पिता है वह (कल) पौत्रके रूपमें आयेगा। बाप है या दादा है (वह) बेटेका बेटा हो जायेगा। क्या करेंगे ? हो सकता है कि उसी घरमें उसका जन्म हो जाये। (ऐसा भी) बन सकता है। (इसलिये) कोई किसीका कुछ है, ऐसा नहीं है। सब जीव हैं, ऐसा मानना है। (और जो) (बाह्य) व्यवहार है, संसारका व्यवहार है वह संसारकी तरहसे चलता है। उसमें तो ऐसा ही चलेगा। लेकिन मान्यतामें क्या (होना चाहिये) ? वह बात (मुख्य) है। व्यवहारकी बात अलग है, मान्यताकी बात अलग है। इस पर थोड़ी और चर्चा लेंगे। अभी समय हुआ है।

*

पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रवचन अब Youtube पर

परम उपकारी पूज्य भाईश्री शशीभाईजी के प्रकाशित पुस्तकों के प्रवचन गुजराती एवं हिन्दी भाषा के **Subtitle** साथ अब देखिये। **You tube** में **Satshrut prabhavna channel** पर जाकर यह प्रवचन सुन सकते हो। राज-हृदय, कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी के ग्रन्थ पर हुए प्रवचन अभी चल रहे हैं। हर रविवार सुबह ११ बजे इन प्रवचनों का जीवंत प्रसारण होता है, जिसका सर्व मुमुक्षुओं को लाभ लेने की विनती। **Channel** को **Subscribe** करने से आगामी प्रसारित प्रवचन का **Notification** स्वयं ही प्राप्त हो जायेगा।

‘मार्गदर्शन’

– ‘द्रव्यदृष्टि प्रकाश’ – पूज्य निहालचंद्रजी सोगानी

अपने सहज सुखकी पिपासा होनी चाहिए; जितनी तीव्र पिपासा...उतना जल्दी काम होता है। (२९२)

✻

अपने तो अपना समझना। दूसरा कैसा समझता है, कैसा नहीं, इसका क्या प्रयोजन ? दूसरेमें रुकेगा तो अपना काल व्यर्थ चला जाएगा। (३०२)

✻

प्रश्न :– स्व-परकी प्रतीति करनेका तो शास्त्रमें आता है न ?

उत्तर :– अरे ! स्वकी प्रतीति करो। परकी प्रतीति (परमें नहीं, किन्तु) उसमें आ जाएगी। अपनी ख़ुदकी प्रतीति करो। (३२७)

✻

प्रश्न :– पक्ष इधर (स्वरूपमें) आये बिना कैसे करें ?

उत्तर :– अरे भाई ! विकल्पात्मकभाव में (निर्णयमें) तो यह पक्ष करो; पीछे इधर (स्वरूपमें) जम जाओ। (३३०)

✻

परिणामका विवेक तो, जो अनंत सुखी होना चाहते हैं उनको सहज होना चाहिए। (३५७)

✻

‘पुरुषार्थ करुँ’ ‘ज्ञान करुँ’– यह अभिप्राय भी हटा दें। ‘तू वर्तमानमें ही पुरुषार्थकी खान है’। वर्तमान परिणाम ऊपरकी दृष्टि झूठी है। (३५८)

✻

इतनी-सी बात है – जो उपयोग पर में झुकता है, उसको स्वमें झुकाने का है। (३७७)

✻

प्रश्न :– घरवालों की हरएक प्रकारकी प्रतिकूलता होनेसे अपना कार्य कैसे करुँ ?

उत्तर :– अपने अंदर में बैठकर अपना काम करो ! अपना यह कार्य अंदर में बैठकर करने में न घरवाले जानेंगे और न बाहरवाले जानेंगे। अपन क्या करते हैं और कहाँ हैं, यह भी कोई नहीं जानेगा। – ऐसे अंदरमें अपना काम हो सकता है। (३८६)

✻

मैं ज्ञायक हूँ – ऐसी परिणति प्रगट कर !

तत्त्वचर्चा मंगलवाणी-सीडी -१५ - A

- प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन

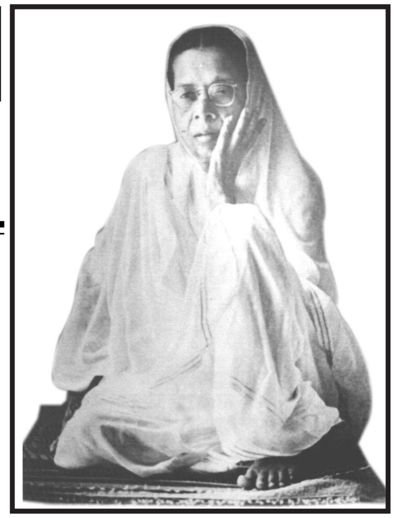

मुमुक्षु :- रुचि का बल उतना आना चाहिये कि धीरे-धीरे पूरी परिणति पलटती जाये।

समाधान :- पलटने का प्रयत्न अन्दरसे होना चाहिये। श्रद्धा की बराबर है। श्रद्धा करके खड़ा रहा कि यह मार्ग है। फिर आगे नहीं बढ़ता। लेकिन पूरा विपरीत ही चला जाये ऐसा तो नहीं होगा। इस ओर जाना है। इसलिये उसे धीरे-धीरे इस ओर चलने का ही प्रयत्न होगा। उस ओर अधिक तन्मय नहीं हो जाय, उस रास्ते पर आगे नहीं बढ़ जाये उसका तो उसे ख्याल रहे। इसलिये कर्ताबुद्धि में तन्मय होते वक्त, मैं ज्ञायक हूँ, उसप्रकार का प्रयत्न उसे अन्दर होना चाहिये।

मुमुक्षु :- थोड़ा-थोड़ा पकड़ में आता है। ज्ञायक की रुचि बढ़नेपर इस ओर का बल ऐसा आना चाहिये कि उसे कर्तृत्व की बुद्धि छूट जानी चाहिये।

समाधान :- छूट जानी चाहिये। कितनों को उसप्रकार की रुचि होती है, श्रद्धा होती है कि कुछ प्रयत्न नहीं चलता हो तो रुचि करके खड़ा रहा है। लेकिन श्रद्धा का बल यथार्थ हो तो उसकी परिणति स्वयं की ओर झुकाने का, ज्ञायकरूप होने का प्रयत्न अन्दर जिज्ञासारूप, अभ्यासरूप भी होना चाहिये। तो वह आगे बढ़ता है, नहीं तो वहीं का वहीं खड़ा है।

मुमुक्षु :- वहीं का वहीं यानी विचारपूर्वक जो निर्णय किया है उसमें ही खड़ा है।

समाधान :- हाँ, उसही निर्णय में खड़ा है। थोड़ा कर्तृत्वबुद्धि का रस मन्द पड़ा है और एकत्वपना का रस मन्द पड़ा है, उतनी श्रद्धासे रस मन्द पड़ा है। लेकिन अभी वह भेदज्ञान के अभ्यास में नहीं गया है।

मुमुक्षु :- वह अभ्यास सहज चले तो उसका अर्थ कि श्रद्धा का बल बढ़ता जाता है।

समाधान :- श्रद्धा का बल बढ़ता जाता है, यदि अभ्यास चले तो।

मुमुक्षु :- माताजी! भावभासन में क्या होता होगा?

समाधान :- भावभासन यानी यह ज्ञायक है, उस ज्ञायक का भाव उसे भासित होना चाहिये कि यही ज्ञायक है, दूसरा नहीं। ये सब जो विकल्प आते हैं वह नहीं, लेकिन ये जो ज्ञायक है वही ज्ञायक मैं हूँ, इसप्रकार का भाव अन्दरसे (भासित होता है)। चैतन्य का भाव, चैतन्य का स्वभाव उसके भासन में आना चाहिये। मात्र जाने कि ये बाहर का जाने वह मैं, ऐसे नहीं। जो स्वयं ज्ञायक है, उसका स्वयं भास

होना चाहिये। कि यह स्वयं ज्ञायक, खुद अपनेसे ही स्वयं वस्तु स्वतःसिद्ध है। वह स्वयं ज्ञायक है। उस ज्ञायक का भाव उसे भासन में आना चाहिये।

मुमुक्षु :- भावभासन हो तो पुरुषार्थ अधिक सरल होता होगा?

समाधान :- स्वयं को पहचाने इसलिये पुरुषार्थ उसे आसान होता है। पहचाने तो आगे जाये न। बिना पहचाने आगे कैसे जायेगा? मार्ग को जाने, स्वभाव को पहचाने तो उसका पुरुषार्थ उस ओर जाये। इस ओर जाना है तो उस ओर पंथ काटने का प्रयत्न करे। रुचि करके खड़ा है वह ठीक है, लेकिन अभ्यास करे तो उसे ज्ञायक है, ज्ञायक ज्ञायकरूप कैसे हो? उसप्रकार का उसे अंतरसे वेदन लगनी लगनी चाहिये, तो उसप्रकार का प्रयत्न हुए बिना रहता नहीं। फिर कोई रट्टा लगानेरूप कर देता है, कोई रुखा कर देता है कि मैं तो जाननेवाला हूँ, तो कुछ करता ही नहीं। उसकी बात नहीं है। लेकिन अंतरसे जिसे लगी है और ज्ञायक का भाव ग्रहण करके जो खड़ा है और पुरुषार्थ करता है तो उसमें कोई बार उसे विकल्परूप, कोई बार भाव-भावभासनरूप पुरुषार्थ उसे चलता रहता है। कोई ऐसा कहे कि मैं तो जाननेवाला हूँ, मैं तो कुछ करता नहीं। ऐसे रूखी बात करे उसकी कोई बात नहीं है।

मुमुक्षु :- संसारसे मुँह मोड़ने की नियत दिखनी चाहिये।

समाधान :- उसकी नियत दिखनी चाहिये संसारसे मुँह मोड़ने की। तो उसकी रुचि सच्ची है। तो उसकी श्रद्धा का बल है। दृष्टि उसकी उन्मुख थी वह सन्मुख होकर अपनी ओर जानी चाहिये। उसे, पंथ इस ओर काटने का है ऐसा अन्दरसे लगना चाहिये, रुचि लगनी चाहिये। इस ओर अब नहीं जाना है। जड़ के पंथपर या परपदार्थ को मैं कर सकता हूँ, विभाव और राग-द्वेष में एकत्वबुद्धि के पंथ पर नहीं जाना है, अब ज्ञायक के पंथ पर जाना है। ऐसी अंतरसे रुचि लगनी चाहिये।ज्ञायक में ही सब भरा है। और कहीं भी आश्चर्य नहीं है, कहीं और महिमा नहीं है। जगत में सब प्राप्त हो चुका है, एक ज्ञायक नहीं प्राप्त हुआ और जो गुरुदेवने समझायी है ऐसी अपूर्व बात, बस, वही ग्रहण करने जैसा है। उसप्रकार की दिशा, उसका मुँह अन्दर स्वयं की ओर मुड़ जाना चाहिये।

मुमुक्षु :- सच्चा निर्णय होने के बाद निर्विकल्प रुचि प्रगट होने पूर्व ऐसा सब प्रकार बनता है कि क्रमशः उसे मेरा सुख, मेरा ज्ञान सब मुझमें है। ऐसे रुचि बढ़ते-बढ़ते इसप्रकार सर्वथा रुचि..

समाधान :- इसप्रकार वह आगे बढ़ता है। अभ्यास करते-करते। एकदम नहीं हो जाता, उसका अभ्यास करता जाता है। एकदम अंतर्मुहूर्त में होता है वह अलग बात है, बाकी जो करता है वह अभ्यासपूर्वक आगे बढ़ता है। उसे ज्ञायक का ज़ोर बढ़ते-बढ़ते, उसकी ज्ञाता की धारा बढ़ते-बढ़ते, उसमें एकाग्रता बढ़ते-बढ़ते, विकल्प की आकुलता कम हो और ज्ञाता में एकाग्रता बढ़ते-बढ़ते ही उसके विकल्प टूटते हैं। तो ही उसे निर्विकल्प दशा और स्वानुभूति और सिद्ध दशा का अंश जो अनुभव में आता है, वह स्वयं भिन्न पड़े तो ही आता है।

* (तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

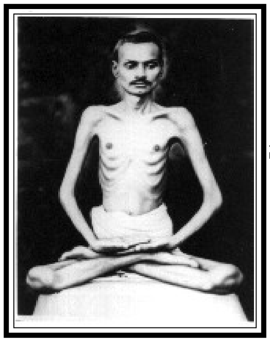

- परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी राजहृदय !!

पत्रांक - ३८६

बंबई, आषाढ़ वदी ३०, १९४८

पत्र प्राप्त हुए हैं। अत्र उपाधि नामका प्रारब्ध उदयरूप है। उपाधिमें विक्षेपरहित होकर व्यवहार करना यह बात अत्यंत विकट है; जो रहती है वह थोड़े कालमें परिपक्व समाधिरूप हो जाती है।

समात्मप्रदेश-स्थितिसे यथायोग्य। शांतिः

*

पत्रांक - ३८७

बंबई, श्रावण सुदी, १९४८

जीवको स्वस्वरूप जाने बिना छुटकारा नहीं है; तब तक यथायोग्य समाधि नहीं है। यह जाननेके लिये मुमुक्षुता और ज्ञानीकी पहचान उत्पन्न होने योग्य है। ज्ञानीको जो यथायोग्यरूपसे पहचानता है वह ज्ञानी हो जाता है - क्रमसे ज्ञानी हो जाता है।

आनन्दघनजीने एक स्थानपर ऐसा कहा है कि-

'जिन थई' 'जिनने' जे आराधे, ते सही जिनवर होवे रे ।
भृंगी ईलिकाने चटकावे, ते भृंगी जग जोवे रे।।

जिनेन्द्र होकर अर्थात् सांसारिक भाव संबंधी आत्मभाव त्यागकर, जो कोई जिनेन्द्र अर्थात् केवलज्ञानीकी-वीतरागकी आराधना करता है, वह निश्चयसे जिनवर अर्थात् कैवल्यपदसे युक्त हो जाता है। उन्होंने भृंगी और ईलिकाका ऐसा दृष्टांत दिया है जो प्रत्यक्ष-स्पष्ट समझमें आता है।

यहाँ हमें भी उपाधियोग रहता है; अन्य भावमें यद्यपि आत्मभाव उत्पन्न नहीं होता और यही मुख्य समाधि है।

*

पत्रांक - ३८८

बंबई, श्रावण सुदी ४, बुध, १९४८

'जगत जिसमें सोता है, उसमें ज्ञानी जागते हैं, जिसमें ज्ञानी जागते हैं उसमें जगत सोता है। जिसमें जगत जागता है, उसमें ज्ञानी सोते हैं ' ऐसा श्रीकृष्ण कहते हैं।

आत्मप्रदेश समस्थितिसे नमस्कार।

*

पत्रांक – ३८९

बंबई, श्रावण सुदी १०, बुध, १९४८

असत्संगमें उदासीन रहनेके लिये जीवमें अप्रमादरूपसे निश्चय होता है, तब 'सत्ज्ञान' समझमें आता है; उससे पहले प्राप्त हुए बोधको बहुत प्रकारके अन्तराय होते हैं।

जगत और मोक्षका मार्ग ये दोनों एक नहीं है। जिसे जगतकी इच्छा, रुचि, भावना है उसे मोक्षमें अनिच्छा, अरुचि, अभावना होती है, ऐसा मालूम होता है।

*

पत्रांक – ३९०

ॐ नमः

बंबई, श्रावण सुदी १०, बुध, १९४८

आत्मरूप श्री सुभाग्यके प्रति,

निष्काम यथायोग्य।

जिन उपार्जित कर्मोंको भोगते हुए भावीमें बहुत समय व्यतीत होगा, वे बलपूर्वक उदयमें आकर क्षीण होते हों तो वैसा होने देना योग्य है, ऐसा अनेक वर्षोंका संकल्प है।

व्यावहारिक प्रसंग संबंधी चारों तरफसे चिंता उत्पन्न हो, ऐसे कारण देखकर भी निर्भयता, आश्रय रखना योग्य है। मार्ग ऐसा है।

अभी हम विशेष कुछ लिख नहीं सकते, इसके लिये क्षमा माँगते हैं और निष्कामतासे स्मृतिपूर्वक नमस्कार करते हैं। यही विनती।

नागर सुख पामर नव जाणे, वल्लभ सुख न कुमारी,
अनुभव विण तेम ध्यान तणुं सुख, कोण जाणे नर नारी रे, भविका०

मन महिलानुं रे वहाला उपरे, बीजां काम करंत।

*

आवश्यक सूचना

''स्वानुभूतिप्रकाश'' मासिक पत्रिका समयपर प्राप्ति हेतु जिन लोगोंको (e-copy) - pdf. की अगर आवश्यकता हो तो वे अपना रजिस्ट्रेशन करवाने हेतु निम्न नंबर पर संपर्क करें। श्री नीरव वोरा – ९८२५०५२९१३

ज्ञेयोंकी सावधानी ज्ञानको भ्रमित करती है !!

- सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई

'पूज्य गुरुदेवके वचनामृतोंके विचारका प्रयोग करना।' सिर्फ सुन लेना नहीं है परन्तु अपने जीवनमें या उदय प्रसंगमें इसका प्रयोग करना है कि, यह समझ कैसे लगानी है और उदयसे कैसे भिन्न होना है? यह प्रयोग करो।

प्रश्न :– फिलहाल यह स्वाध्यायका उदय चल रहा है इस समय कैसे करना?

समाधान :– इसमें भी ज्ञायकको लक्ष्यमें रखो! आयेगा आगे, ज्ञायक...ज्ञायक...ज्ञायक... ज्ञायककी रुचि और ज्ञायकका लक्ष्य रखना। वचनको ज्ञेय नहीं बनाना है परन्तु जाननेवालेको ज्ञेय बनाना है। अर्थात् जो सुनाई दे रहे हैं ऐसे वचन, कर्णेन्द्रियका विषय है न? वचन है सो तो कर्णेन्द्रियका विषय है। इन कर्णेन्द्रियके विषयरूप वचनोंसे मैं ज्ञायक पदार्थ भिन्न हूँ। – ऐसे ज्ञायकके लक्ष्यपूर्वक भेदज्ञान करना कि इससे भी भिन्न हूँ।

आदमी खाना खाने बैठता है तब पहले ऐसा विचार रहता है क्या कि, इसमें नमक डाला होगा कि नहीं डाला होगा? पहले मैं नक्की कर लूँ फिर खाना शुरू करूँगा। वहाँ तो जैसे ही प्रथम कवल लिया कि तुरंत नमक नहीं डाला हो तो अपना ज्ञान हाज़िर होता है। नमक नहीं डाला है। नमककी जाँच किये बिना भी कैसे ध्यान चला गया? कि इसमें नमक नहीं है और फीका लग रहा है? जबकि ऐसी जाँच करनेका तो सोचा भी नहीं था। फिर भी स्वाद आते ही 'नमक नहीं है' ऐसी सजगता कैसे हुई? वहाँ ज्ञान हाज़िर हुआ। इसप्रकार कोई भी रसोई हो, चाहे कितनें ही नमकीन हो, सब्ज़ी हो जिसमें नमक इस्तेमाल होता है चाहे दाल हो कुछ भी हो, किसीमें भी नमक नहीं हो तो तुरंत पता चल जाता है। नमककी गैरमौजूदगीका हमें तुरंत पता लगता है। तो फिर ये सभी पदार्थोंको सर्वकाल जो जान रहा है ऐसे ज्ञानकी गैरमौजूदगी क्यों पकड़में नहीं आती है? मैं ज्ञानस्वरूप मौजूद हूँ, हाज़िर हूँ – यह बात क्यों छूट जाती है? एक भी चीज़में नमककी कमी हो तो भी मैं इसे नहीं भूलता हूँ तो यह जो सर्वकाल जानता ही रहता है, जिसकी हाज़िरीमें–उपस्थितिमें ही 'सब कुछ' है – ऐसा खयाल आता है, इसकी उपस्थितिको ही मैं कैसे चूक जाता हूँ ?! यह एक विचार करने योग्य स्थिति है। इस स्थितिका विचार करना चाहिये। जब तक यह भूल हो रही हो तब तक यह भूल क्यों हो रही है? इस बातको ज़रा विशेष बारीकीसे, विशेष दरकार सहित इस बातकी जाँच करो। कोई ऐसा नहीं कहते कि, भाई! इस विषयमें यह आदमी बहुत ज्यादा ही सावधानी बरतनेवाला आदमी है। किसी बातको ढीली नहीं छोड़ता, जो जल्दीसे बातको छोड़ न सके। वैसे

यहाँ इस बातको इतनी विशेष सतर्कतासे पकड़नी चाहिये कि, ऐसा क्यों होता है ? 'ज्ञान'कि जो सबको जानता है उसे ही मैं भूल जाता हूँ !! जिसकी मौजूदगी में ही सबका पता चलता है क्या मैं उसको ही भूल रहा हूँ !! यह कैसी विचित्रता है? ऐसा क्यों बन रहा हैं?

ऐसा होनेका स्पष्ट कारण ऐसा है कि, जो जाननेमें आते हैं ऐसे ज्ञेयोंमें जीवको इतना आकर्षण और इतनी निष्ठा है कि ऐसा ज्ञेयनिष्ठ हुआ ज्ञान स्वयं अपनेको भूलता है और ज्ञेयमें सावधान रहता है। ज्ञेयोंकी सावधानी ज्ञानको भुलावेंमें डालती है। जिसमें जानना होता है उसकी बेसावधानी रहती है, उस प्रति असावधानी रहती है और जो जाननेमें आते हैं ऐसे पदार्थोंमें सावधान हो जाता है। यह उलटा हो रहा है, यह विपरीतता है, जीवकी विरुद्धता है और वहाँ से मिथ्यात्वका जन्म होता है।

अतः ऐसा कहते हैं कि, ठीकसे प्रयोग करो। 'मैं जाननेवाला हूँ ' इस बातको रुचिपूर्वक प्रधान्यता दो। जाननेवालेकी रुचिपूर्वक ज्ञायककी मुख्यता करो यो नियम भी ऐसा ही है कि, जिसकी रुचि होती है उस विषयकी ही मुख्यता होती है। उस विषयको गौण करना चाहे तो भी हो नहीं सकता। ऐसी वस्तु विज्ञानकी स्वतः परिस्थिति होती है। जिसकी रुचि उसकी मुख्यता रहती है। जिसकी मुख्यता रहती हो उसकी रुचि जीवको होती ही है। रुचिकी जाँच करनी हो तो यहाँसे कर सकते हैं। मेरी रुचि कहाँ है यह आसानीसे पकडमें न आता हो तो मुझे किसकी मुख्यता रहा करती है? इस परसे रुचि कहाँ काम करती है यह बात स्पष्टरूपसे पकड़में आती है।

प्रश्न :– प्रयोगका मतलब जाँच करना? अवलोकन करना?

समाधान :– प्रयोग करना मतलब आज़माना। वचनामृतमें जो कहनेका उद्देश्य है इसकी समझतो क्षयोपशमके कारण ठीकसे होती है। समझको आज़माना, समझका उपयोग करना इसका नाम है प्रयोग। एक दृष्टांत ले कि, 'राग दु:खरूप है' ऐसा कहा। हमने सम्मत भी कर लिया कि ठीक है कि राग दु:खरूप है परंतु वर्तमानमें प्रवर्तित राग दु:खरूप है यह बात समझपूर्वक लगती है क्या ? समझमें वह दु:खरूप मालूम पडती है क्या? यदि दु:ख नहीं लगता है तो यह भूल हो रही है, जानना गलत हो रहा है, समझमें भ्रांति हो रही है, आगे जो समझ की है वह बेकार हो रही है और कुछ एक राग सुखरूप लगते हैं, सुहावने लगते हैं। यह सुहावना लगना यह बहुत बड़ी भूल हो रही है। बिलकुल विपरीत हो रहा है। जो दु:खरूप है वही सुखरूप लगे तो वहाँ उस विषयमें यदि उसे ज्ञानके साथ, अकषाय स्वभावके साथ उसका मिलान करे तो जीवको अवश्य दु:ख है या सुख है इसका पता चले बिना रहे नहीं।

एक चीज़ जैसे यह अंगूर है। कोई भी खट्टी मीठी मनभावन चीज़ ले लो। उसे खाने के लिये जीभ पर रखी, अच्छी लगी, अंगूर बहुत मीठे हैं। अब प्रयोग ऐसा करना है कि वह चीज़ ज्ञानका ज्ञेय है? या अच्छी या बुरी है? कड़वी दवाई खायी। कड़वी होने पर भी खानी पड़ती है। कड़वा

स्वाद अच्छा नहीं लगता। जबकि करेलेकी स्बज़ी खाते समय शौकसे खाता है। आमरसके साथ करेलेकी सब्ज़ी अच्छी लगती है। कड़वी थी फिर भी! कड़वा कैसे अच्छा हो गया? कड़वा स्वाद अच्छा है क्या? कड़वा स्वाद अच्छा भी नहीं है और बुरा भी नहीं है, सिर्फ ज्ञानमें जानने योग्य है ऐसा कोई प्रयोग किया कभी? ये सारे उदय प्रसंग हैं, रोज़ाना उदयके प्रसंग हैं। आहार लेना, खाना खाना ये रोज़ाना उदयके प्रसंग हैं। यह अच्छा है, यह अच्छा लगता है। क्षण-क्षण, प्रसंग-प्रसंग पर इष्ट-अनिष्ट, इष्ट-अनिष्टपना हुआ ही करता है। जबकि इनमेंसे कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है। हम इसमें इष्ट-अनिष्टपनेकी केवल कल्पना करते हैं और ऐसे पदार्थोंमें केवल कल्पनासे इष्ट-अनिष्टपना कर-करके अपने ज्ञायक स्वभावको भूलनेका कार्य किया है। इसमें बड़ी आपत्ति ऐसी है कि, इष्ट-अनिष्टपना करते हुए स्वयंको भूलता है और दर्शनमोह तीव्र कर लेता है। इष्ट-अनिष्टपना करते हुए दर्शनमोह बढ़ाता है और इतना बड़ा नुकसान करता है कि, स्वरूपके नज़दीक आनेमें ऐसा परिणमन जीवको आपत्ति पैदा करता है, अवरोधरूप होता है, दीवार खड़ी कर देता है, अंतरायरूप हो जाता है, यह बात इसकी समझमें नहीं आती।

प्रश्न :- यह तो एक प्रतिपक्षकी बात हुई, किन्तु अब ज्ञानी क्या करते हैं?

समाधान :- प्रयोग कैसे करना सो विषय चल रहा है। ज्ञानी प्रयोग करते हैं कि, मैं तो ज्ञाता-दृष्टा हूँ। कोई भी पदार्थ इस जीवके लिये इष्ट-अनिष्ट कैसे हो सकते हैं? आत्मा ज्ञानस्वरूप है और सदा ज्ञानस्वरूप रहता है। अविकृत इसका स्वभाव है। इष्ट-अनिष्टपनेकी विकृति है वह स्वरूपसे बिलकुल विरुद्ध है। अतः स्वयं अपने ज्ञातादृष्टा भावमें रहते हैं। ज्ञानी कहाँ रहते हैं? कि ज्ञातादृष्टा भावमें रहते हैं। ना तो संयोगके बीच हैं ना रागमें हैं। बाह्यदृष्टिसे देखें तो उनको ऐसे संयोग हैं और उनको ऐसा राग है ऐसा लगता है जबकि वास्तवमें वे उसमें सावधान नहीं होते। उन्होंने अपना स्थान, अपना आसन, अपनी स्थापना उन्होंने अपने स्वभावमें कर रखी है और स्वभावमें ही वे सावधान हैं, अन्यत्र कहीं नहीं।

(प्रवचनांश... 'बहिनश्रीके वचनामृत' बोल-१३८, 'अध्यात्म सुधा' भाग-४, दिनांक-२०-६-१९८७, पन्ना-२१० से २१३, प्र. क्र.-१०२)

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (जुलाई-२०२५, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पणराशि
स्व. स्वाति जैनके स्मरणार्थ, हस्ते श्रीमती बेलाबहिन जैन, भावनगर
की ओरसे ट्रस्टको साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकोंको आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

मुनिहृदयसे प्रवाहित आत्मस्वरूपका अमृत...

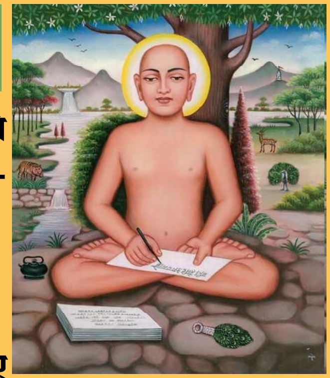

* द्वादशांगका तथा प्रत्येक पूर्वका सार यही कहा गया है कि यद्यपि मेरा आत्मा शरीर सहित है, तथापि निश्चयसे यह आत्मा, परमात्मा है – ऐसा जाननायोग्य है। ८

(श्री तारणस्वामी, ज्ञानसमुच्चयसार, श्लोक–७६)

* जैसे सिद्ध आत्मा हैं, वैसे ही भवलीन (संसारी) जीव हैं; इसलिए (वे संसारी जीव, सिद्धात्माओं के समान) जन्म–जरा–मरण से रहित और आठ गुणोंसे अलंकृत हैं। ९ (श्री कुंदकुंदाचार्यदेव, नियमसार, गाथा –४७)

* यह आत्मा ही निश्चयसे श्री जिनेन्द्र परमात्मा है। हे भाई ! तारण–तरण स्वरूप जिनेन्द्रदेव जिसको जिन कहते हैं, ऐसे अपने आत्मारूपी जिन भगवानका ध्यान करो। यह आत्मा ही निश्चयसे तारण–तरण अरिहंत परमात्मा है। १० (श्री तारणस्वामी, ममलपाहुड़, भाग–१, पृष्ठ–३४९)

* मेरा आत्मा, परमात्मा है, वह परम ज्योति प्रकाशस्वरूप है, जगतमें ज्येष्ठ है, महान है, तो भी वर्तमानमें देखने मात्रसे रमणीक और अंतमें निरस, ऐसे इन्द्रियोंके विषयोंसे ठगाया गया हूँ । ११

(श्री शुभचन्द्राचार्य, ज्ञानार्णव, ३१,२, श्लोक–८)

* हे भव्य! जब स्फटिकमणिकी जिनमूर्तिके समान अन्तरमें अपने शुद्धात्माको तू भायेगा, तब कर्मजाल स्वयमेव क्षणमें ही कट जायेंगे और आत्मभावोंमें तू परिशुद्ध हो जायेगा। १२

(श्री नैमिश्वर, वचनामृत शतक, श्लोक–३८)

* अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु – ये पाँचों परमेष्ठी इस आत्माके ही परिणाम हैं, इसलिए आत्मा ही मुझे शरण है। १३ (श्री कुंदकुंदाचार्य, बारस अनुप्रेक्षा, गाथा–१२)

* हे उत्तम मतिमान् ! 'शुद्ध चिद्रूपोडहम् ' शुद्ध चिद्रूप हूँ, इन छह अक्षरोंका तू निरन्तर ध्यान कर। इस सद्विचारोंसे तुझे भलीभाँति समझमें आयेगा कि इस शुद्ध चिद्रूपका स्मरण ही संसारमें सर्व तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ है, शास्त्रज्ञानरूप समुद्रमें उत्पन्न हुआ शीघ्र ग्रहण कर लेनेयोग्य, उत्तम अमूल्य रत्न है, सर्व सुखोंका निधान है, मोक्ष पदमें पहुँचानेवाला त्वरित गतिवाला वाहन है, कर्मके समूहरूप धूलको दूर करनेके लिए वायुका चक्र है और संसार परिभ्रमणरूपी वनको जलाकर भस्म करनेके लिए अग्नि है – ऐसा तू निश्चयसे जान। १४ (श्री ज्ञानभूषण, तत्त्वज्ञान तरंगिणी २, गाथा–७)

('परमागम–चिंतामणि'में से साभार उद्धृत)

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2024-2026
RENEWED UPTO : 31/12/2026
R.N.I. NO. : 70640/97
Title Code : GUJHIN00241
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition : **3600**
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mayur process 9374825041